संपादकीय

# शिक्षा के अधिकार का एक वर्ष

इस वर्ष नए सत्र के आरंभ होने से पहले मैंने अपनी बेटी के दाखिला के लिए जयपुर के कई निजी स्कूलों में संपर्क किया। ये सभी स्कूल शहर के जाने-माने स्कूल हैं जिनकी भव्य इमारतें, चमकदार व्यवस्थाएं और बड़े-बड़े परिसर किसी भी सामान्य आदमी को अन्दर घुसने से रोकते हैं। एक स्कूल के आलीशान स्वागत कक्ष में बैठी महिला ने बिना बैठने के लिए कहे निर्लिप्त भाव से पूछा, ''आपको किस कक्षा में दाखिला दिलाना है ? आपकी बेटी कौनसे स्कूल में पढ़ती है ? आप अपनी बेटी को फलां तारीख को ले आइए, उसका एन्ट्रेन्स एग्जाम होगा।'' पहले के सभी सवालों का जवाब देने के बाद मैंने संतुलित स्वर में कहा, ''शायद आपको यह तो मालूम होगा ही कि शिक्षा के अधिकार के आने के बाद बच्चों की प्रवेश परीक्षा नहीं ली जा सकती।'' महिला ने सफाई देते हुए कहा, ''एग्जाम जैसा कुछ नहीं होगा। बच्चे से बस थोड़ी बात करके देखेंगे।'' मैंने फीस वगैरह के बारे में जानना चाहा तो मुझे डिस्पले बोर्ड का रास्ता बताते हुए कहा कि, ''बोर्ड पर लिस्ट लगी है, देख लीजिए।'' बोर्ड पर लगी लिस्ट में प्रवेश शुल्क और तिमाही फीस से मेरा सिर थोड़ा चकराया। किसी भी कक्षा में एक बच्चे का खर्च सालाना साठ हजार से कम नहीं था। पहले दबे-छुपे ली जाने वाली डोनेशन अब प्रवेश शुल्क के नाम से खुल्लम-खुल्ला ली जा रही है। मैंने एक बार प्रिंसिपल से मिलने का अनुरोध किया तो मुझसे कारण पूछा गया। मैंने बताया, ''बस, थोड़ा समझना चाहता हूं कि आपके स्कूल में पढ़ाई-लिखाई किस तरह होती है।'' लेकिन मुझे मिलने की इजाजत नहीं मिली। शायद, स्वागत कक्ष में बैठी महिला ने प्रिंसिपल से मिलने की इजाजत लेने के वक्त मुझसे हुई अभी तक की बातचीत की रिपोर्ट दे दी होगी।

ऐसा ही किस्सा एक दूसरे स्कूल का है। यह स्कूल बहुत पुराना नहीं है। यह स्कूल अभी कुछ ही वर्ष पहले सरकार से बहुत ही रियायती दरों पर जमीन का आवंटन करवाकर आरंभ हुआ है। कुछ लोगों से तारीफ सुनकर मैंने उस स्कूल में पहले फोन से संपर्क किया। फोन पर मुझे बताया गया कि अभी कुछ सीट खाली हैं और एक बार स्कूल आकर मिलने को कहा। मैं अगले दिन जब स्कूल पहुंचा तो उस स्कूल में प्रवेश के काम को देखने वाली मैडम से बातचीत हुई। वे बड़े उत्साह के साथ अपने स्कूल के बारे में बताने लगीं। बातचीत के दौरान मेरी नजर स्कूल के डिसप्ले बोर्डों पर गई, जिन पर फोटो के साथ कुछ और भी बातें लिखी थीं; जैसे, हमारा स्कूल क्या सिखाता है; और इसके जवाब में लिखा था- ईमानदारी, मेहनत, सत्य बोलना, आत्म-विश्वास, अनुशासन, बराबरी और इसी तरह की करीब 12-13 बातें। मैंने पूछ ही लिया कि, ''इन सब बातों को आप अपने स्कूल में सिखाते कैसे हैं।'' मैडम इस अनपेक्षित सवाल को सुनकर थोड़ा हड़बड़ा गईं। यह देखकर मैंने अपनी बात को बदलते हुए पढ़ाने के तरीकों पर बात शुरू की। उन्होंने तयशुदा-सा जवाब दिया कि हमारे यहां गतिविधियां होती हैं, बच्चों को बाहर ले जाते हैं, कोई भी बच्चा शिक्षक से बीच में प्रश्न पूछ सकता है, पुस्तकालय का उपयोग होता है इत्यादि। फिर मैंने स्कूल में खिलाए जाने वाले खेलों के बारे में जानना चाहा। मैंने अपनी बेटी की बैडमिंटन में रुचि को ध्यान में रखते हुए पूछा कि, ''आपके यहां खेल कौन-कौनसे होते हैं।'' उन्होंने कुछ लोकप्रिय खेलों के नाम बताए, जैसे क्रिकेट, फुटबॉल, बास्केटबॉल आदि और साथ ही जोड़ा कि ये खेल सभी बच्चों को खिलाए जाते हैं। मैंने पूछा, ''क्या आपके यहां बैडमिंटन भी होता है ?'' उन मैडम को यह मालूम नहीं था तो उन्होंने खेल शिक्षक को बुलाया। खेल शिक्षक ने आने के बाद स्कूल में खिलाए जाने वाले खेलों के बारे में तारीफ भरे स्वर में कहना शुरू किया कि बहुत से खेल हैं और कोई भी बच्चा किसी भी खेल को चुन सकता है। मैंने पूछ लिया कि, ''आपके यहां क्रिकेट कितनी लड़कियां खेलती हैं ?'' उन्होंने झिझकते हुए बताया कि, ''शायद अभी तो लड़कियां नहीं खेलतीं लेकिन यदि लड़कियां चाहें तो खेल सकती हैं।''

इतनी बातचीत का अंजाम ये हुआ कि करीब आधे घंटे की बातचीत के बाद जब मैंने प्रवेश फॉर्म मांगा तो मैडम ने बताया कि, ''सर, आज ही हमारे यहां के शिक्षकों के कुछ बच्चे आ गए हैं, इसलिए अभी सीट भर गईं हैं।'' मेरे स्कूल पहुंचने तक जो सीट खाली थीं वे मेरे सवालों के बाद भर गईं थीं। मुझे समझने में देर नहीं लगी कि शायद उन्हें स्कूल की प्रक्रियाओं के बारे में 'नाजायज सवाल' पसंद

नहीं आए। मैंने अपने एक दोस्त को फोन पर पूरा किस्सा बताकर कहा कि फोन करके पता लगाओ कि क्या फलां कक्षा में एक बच्चे का दाखिला हो सकता है। मैडम ने सीधे यह सवाल किया कि, ''आपका बच्चा किस स्कूल में पढ़ता है ?'' इसका जवाब सुनते ही उन्होंने कहा कि, ''नहीं, आज ही सुबह सीट भर चुकी हैं।''

ऐसे अनुभव सिर्फ मेरे अकेले के ही नहीं हैं। बहुत से माता-पिताओं से इस बारे में बात होती है और वे सभी निजी स्कूलों की इस मनमानी से परेशान नजर आते हैं लेकिन वे अपने-आपको बेबस पाते हैं। लचर राजकीय स्कूली व्यवस्था के कारण इन निजी स्कूलों में जाना उनकी मजबूरी है और निजी स्कूल इस मजबूरी का भरपूर फायदा उठाते हैं।

केन्द्र सरकार द्वारा शिक्षा के अधिकार को लागू किए एक वर्ष का समय बीत चुका है। अपनी जरूरतों के हिसाब से नियम बनाने और लागू करने के लिए राज्यों को मिली एक वर्ष की मियाद भी खत्म हो चुकी है। इस कानून के उचित-अनुचित होने से उठकर बहस वर्तमान में पूरी तरह इसके क्रियान्वयन के पहलुओं पर केन्द्रित हो गई है। सभी बच्चों का नामांकन, नियमानुसार स्कूल की पहुंच और उनमें बुनियादी सुविधाएं, शिक्षक-बालक अनुपात इत्यादि मौजूदा बहस के दायरे में हैं। कानून के पारित होने से पहले इस कानून के माध्यम से भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में मूलभूत परिवर्तनों की फेरहिस्त को गिनाने वाले अब लगभग खामोश हैं।

पिछले एक वर्ष में राज्यों में नियम बनाने की हलचल रही है और इस बीच कुछ नियमों को लागू करने के आदेश भी जारी हुए। इसके बावजूद राज्य सरकारों के पास इसे लागू करने की कोई स्पष्ट योजना नजर नहीं आती। उपरोक्त अनुभव कम से कम यह बताते हैं कि इस कानून को लेकर राज्य सरकारों की कितनी प्रतिबद्धता है, इस कानून को लेकर आम लोगों की जागरूकता का स्तर क्या है और निजी स्कूलों द्वारा इसके प्रावधानों का किस तरह खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन किया जा रहा है या वे किस तरह बच निकलने के गलियारे खोज रहे हैं।

यदि निजी स्कूल अपनी मनमानी के लिए स्वतंत्र हैं और सरकार इन पर किसी तरह का नियंत्रण स्थापित नहीं कर सकती तो शिक्षा के अधिकार कानून का उन बच्चों और उनके माता-पिताओं के लिए क्या अर्थ बनता है जो निजी स्कूलों में पढ़ते हैं ? शिक्षा के अधिकार स्पष्ट तौर पर उल्लेख करता है कि किसी भी स्कूल में बच्चों की प्रवेश परीक्षा नहीं ली जाएगी, किसी तरह की डोनेशन नहीं ली जाएगी; इसके बावजूद इन स्कूलों ने इन नियमों को ताक पर रखकर इनसे बचने के रास्ते निकाल लिए हैं। इस कानून के आने के बाद ये सारी चीजें पहले की तरह खुले रूप में तो नहीं हो रही हैं लेकिन कर तो ये मनमानी ही रहे हैं। यदि कोई माता-पिता इसके खिलाफ स्कूल में आवाज उठाता है तो उनके पास हजार बहाने होते हैं, उन्हें स्कूल का गेट दिखाने के। हमारी व्यवस्था की बिडंवना ये है कि ये स्कूल न तो बच्चों के माता-पिताओं के प्रति जवाबदेही महसूस करते हैं और न ही कानून की अनुपालना के प्रति प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं।

इस कानून में स्पष्ट रूप से 25 प्रतिशत वंचित वर्ग के बच्चों को निजी स्कूल में मुफ्त शिक्षा पाने का अधिकार दिया गया है लेकिन मेरी नजर में अभी तक एक भी ऐसा स्कूल नहीं आया है जिसने इस नियम की अनुपालना में पहल की है। एक वर्ष बीत जाने के बाद भी सरकार के पास अभी तक इस बात के रिकॉर्ड मौजूद नहीं हैं कि किस निजी स्कूल में कितने बच्चे हैं और वंचित वर्ग के बच्चों की नियत संख्या क्या होगी। चाहे इस कानून के तत्काल क्रियान्वयन के आदेश केन्द्र और राज्य सरकारों ने जारी कर दिए हों लेकिन अभी भी सरकारों के पास इसे सही तरह से लागू करने का कोई स्पष्ट नक्शा नहीं है। एक वर्ष का समय बीत जाने के बाद भी पूरे देश में करीब 14 लाख शिक्षकों की जगहें खाली हैं, अकेले राजस्थान में करीब एक लाख शिक्षकों के पद खाली हैं लेकिन अभी इस दिशा में सरकार किसी तरह की कार्यवाही करती नहीं दिखतीं। इस कानून के आने के बाद यह जरूर हुआ है कि इस कानून के प्रावधानों की शर्तों को पूरा करने के नाम पर सरकारें इन्हें जैसे-तैसे पूरा कर देना चाहती हैं। ऐसे दूरस्थ कोर्स शिक्षक शिक्षा में प्रस्तावित किए जा रहे हैं जिन्हें खानापूर्ति के अलावा कुछ और नहीं कहा जा सकता। सरकार चाहे सभी तक शिक्षा पहुंचाने के कितने ही दावे करे लेकिन इस कानून के क्रियान्वयन में जिस तरह की मन्थर चाल वह चल रही है, उससे उसके संकल्प और प्रतिबद्धता का पता तो चलता ही है। इस कानून के आने से पहले इसके पैरवीकारों के लिए फुर्सत का समय अभी नहीं आया है, इसके सही क्रियान्वयन के लिए अभी मीलों चलना है। ◆

विकल्प